स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८५, मास—मधुसूदन, वार—अनिरुद्ध बुधवार, ३१ चैत्र, सम्वत् २०२८, १४ अप्रेल १९७१ | संख्या ११

अप्रैल १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णास्तोत्राणि

नागपत्नीनां श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१६।३३—५३)

[गताङ्क, पृष्ठ २१० से आगे]

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥

अचिन्त्य ऐश्वर्यादिगुण सम्पन्न आपको नमस्कार है । आप सब जीवोंके अन्तर्यामी और सर्वव्यापक हैं तथा आकाशादि सभी भूतोंके आश्रय स्वरूप हैं । क्योंकि आकाशादि भूत सृष्टिके पहले भी वर्त्तमान थे । आप सर्वकारण स्वरूप होकर भी सर्वकारणातीत तुरीय वस्तु हैं ॥३९॥

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्तेऽप्राकृताय च ॥४०॥

निर्गुण, निर्विकार चिन्मात्र ब्रह्मस्वरूप एवं प्रकृति-प्रवर्त्तक अनन्त शक्तियुक्त परमात्मस्वरूप ज्ञान-विज्ञानके निधि स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४०॥

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

(अनन्त शक्तित्व हेतु) आप कालस्वरूप अर्थात् सृष्ट्यादिके कारण एवं काल शक्तिके आश्रय एवं कालके अवयव अर्थात् सृष्ट्यादि कालके क्षण-कल्प आदि सभी अङ्गोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप और दृश्य विश्वके द्रष्टा, कर्त्ता और निखिल कारण हैं ॥४१॥

भूतमात्रेन्द्रियप्राण-मनोबुद्ध्याशयात्मने ।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढ़स्वात्मानुभूतये ॥४२॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥४३॥

आप पंच महाभूत, पंच तन्मात्र, दस इन्द्रिय, दस या पंच प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार—ये सभी स्थूल और सूक्ष्म जड़वस्तुओंको चैतन्य प्रदान अर्थात् प्रवर्त्तन एवं त्रिगुणात्मक अभिमान द्वारा चेतन-स्वांशभूत जीव समूहकी भी स्वस्वरूपानुभूति आच्छादित करते हैं। आप देश-काल-सीमासे अतीत हैं, अपरिच्छिन्न स्वरूप हैं और दृश्य वस्तुओंके अन्यतम (अन्तर्गत) नहीं हैं। अतएव दुर्ज्ञेय एवं विकारशून्य होनेके कारण कूटस्थ और सर्वज्ञ हैं। आप अपनी बहिरङ्ग माया द्वारा 'अस्ति', 'नास्ति' आदि नाना प्रकारके सत् और असत् सिद्धान्तोंके प्रकाशक हैं, आप शब्द और अर्थकी बहुत प्रकारके शक्तिके मूल कारण-स्वरूपसे प्रतीयमान होते हैं; ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥४२-४३॥

नमो प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

आप नेत्र आदि इन्द्रियोंके इन्द्रियस्वरूप और स्वयं स्वतःसिद्ध ज्ञानस्वरूप हैं अथवा आप श्रीमद्भागवतस्वरूप और भागवत प्रकाशक वेदव्यासस्वरूप हैं। आपसे ही समस्त शास्त्र उत्पन्न हुए हैं। इसलिए आप शास्त्र योनि या शास्त्रप्रवर्त्तक हैं, प्रवृत्ति और निवृत्तिमूलक निगम शास्त्रस्वरूप हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है ॥४४॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चतुर्व्यूहात्मक सात्वत पति कृष्णको नमस्कार है ॥४५॥

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ।
गुणवृत्त्युलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥

आप बुद्ध्यादिके अधिष्ठातृ-स्वरूप संकर्षण आदि चारों मूर्त्तियोंमें चित्त आदिके प्रकाशक हैं, आप उपासकगणोंकी प्रतीतिके अनुसारसे फल-वैचित्र्य प्रदान करनेके लिए स्व-स्वरूप आच्छादित कर नाना रूपसे प्रकाशमान होते हैं । चित्तादिके अध्यवसाय आदि वृत्ति द्वारा आप थोड़े बहुत अनुमित होते हैं, क्योंकि आप गुण-समूहके द्रष्टा और प्रत्यक्षादि ज्ञानके अगोचर हैं, अतएव आपको नमस्कार है ॥४६॥

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशालिने ॥४७॥

आपकी महिमा अतर्क्य या तर्कातीत है । सभी कार्योंकी उत्पत्ति और प्रकाशके हेतुरूपसे आप अनुमित होते हैं (परन्तु साक्षात्कार नही होते) । हे हृषीकेश, 'आवाक्यनादर' इस श्रुति वचन नुसार आप मौन और आत्माराम हैं, आपको नमस्कार है ॥४७॥

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥४८॥

आप स्थूल-सूक्ष्म भूतसमूहकी गति भी जानते हैं । आप सर्वाधिष्ठात्रीस्वरूप हैं, आप अविश्व और विश्वस्वरूप हैं अर्थात् पण्डित लोग 'यह नहीं हैं, 'यह नहीं है' कहकर अतत् निरसरन करते-करते अन्तमें तत्स्वरूप आपको प्राप्त होते हैं। "सर्व खल्विदं ब्रह्म"—यह परिदृश्यमान जगत ही ब्रह्म है—इस प्रकार विश्वका विवर्त्तस्थल है अर्थात् विवर्त्तवादी लोग अतत्स्वरूप विश्वको तत्स्वरूप ब्रह्म कहा करते हैं। (जो वस्तु जो नहीं है, उसे वह कहकर सिद्धान्त करना ही विवर्त्त है । वस्तुतः आप इस प्रकारके अध्यास और अपवादके साक्षीस्वरूप हैं—और मूलकारण हैं, आपको नमस्कार है ॥४८॥

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षयामोघविहार ईहसे ॥४९॥

अनादिकाल-शक्तिधारी आप निरीह एवं निष्क्रिय होकर भी प्रधानके प्रति ईक्षणपूर्वक प्रकृत्तिके गुणोंके द्वारा पूर्व कल्पान्तमें लयप्राप्त विश्वगत जीव समूहके शान्त,

घोर, मूढ़ आदि उस उस पूर्व स्वभावको जागरित कर इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, संहारादि किया करते हैं; प्रकृति-ईक्षणरूप लीला या आपकी सभी लीलायें ही अव्यर्थ हैं ॥४९"

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढ़योनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥५०॥

इस त्रिलोकमें शान्त, अशान्त एवं मूढ़ आदि सभी ही आपके अंश हैं, तथापि इस समय धर्मरक्षाकी इच्छासे लीलाकारी एवं सज्जन-पालनके लिए अवस्थित आपके निकट शान्त व्यक्ति ही प्रिय हुआ करते हैं ॥५०॥

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ।
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढ़स्य त्वामजानतः ॥५१॥

हे आन्तात्मन् ! हमारे पति या पालक और आपके पुत्रतुल्य इस सर्पने जो अपराध किया है, उसे एकबार सहन करना उचित है । क्योंकि वह मूढ़ आपका प्रभाव नहीं जानता । अतएव उसका अपराध क्षमा करने योग्य है ॥५१॥

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥

हे भगवन् ! अनुग्रह कोजिये । आपके भारसे अत्यन्त पीड़ित होकर यह सर्प प्राणत्याग कर रहा है । साधुओंकी अनुकम्पाकी पात्री इन स्त्रियोंको पतिरूप प्राण प्रदान कीजिये ॥५२॥

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ।
यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात् ॥५३॥

आपके आदेशसे जीव श्रद्धापूर्वक जिस कर्मका अनुष्ठान कर सर्वभयसे मुक्त होते हैं, आपकी दासीस्वरूप हमारे प्रति वैसा आदेश दीजिये ॥५३॥

॥ इति श्रीनागपत्नीनां श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥
॥ इति श्रीनागपत्नियोंका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

प्रेम-धर्मका स्वरूप

प्रीतिके धर्म और अप्रीतिके धर्ममें बहुत भेद वर्त्तमान है। जो लोग सोचते हैं कि प्रेम-धर्ममें भी कुछ अप्रीतिकर बातें हैं, तो जानना चाहिए उनके हृदयमें ही कुछ अप्रीतिकर धर्म वर्त्तमान है। आत्म-धर्म ही प्रेम-धर्म या प्रीतिका धर्म है। मनोधर्म ही अप्रीतिका धर्म है। विषयके प्रति आश्रय की नित्या शुद्धा अहैतुकी प्रीति और आश्रयके प्रति विषयकी शुद्धा प्रीति ही प्रेम-धर्म है। प्रेम-धर्ममें चिर ऐक्यतान (Harmony) वर्त्तमान है। प्रेम-धर्म याजनसे बिच्युति होने पर ही हम लोग परस्पर परस्परके प्रति भोगबुद्धि करते हैं। कृष्ण ही एकमात्र मूल विषय हैं और सभी कार्ष्ण ही एकमात्र उसी मूल विषयके आश्रय हैं। सापत्न्य धर्मविशिष्ट मानव जातिके सभी व्यक्ति ही श्रीकृष्णके सेवक हैं। यह बात जान लेने पर मनुष्यको किसी प्रकारसे कोई असुविधा न होगी। उस समय जोव अपने अपने नित्य सिद्धस्वरूप अर्थात् अपनेको 'वैष्णव' जानकर यथार्थ सत्य की उपलब्धि कर सकते हैं। उस समय वैष्णवके साथ वैष्णवकी स्वाभाविक प्रीतिका उदय होता है।

जगतमें प्रीति-धर्म की बात नहीं है। सर्वत्र ही विरोधमय संघर्ष धर्म वर्त्तमान है। यहाँ एक व्यक्ति की प्रीतिमें दूसरे की अप्रीति होती है, एक व्यक्तिके लाभमें दूसरे की हानि होती है। उदाहरणके लिए—कोई यक्ति बकरी, मुर्गी या मछलीको प्रीतिके साथ भोजन करता है, तो उससे भोजन करनेवालेको सामयिक प्रीति होनेपर भी बकरी, मुर्गी या मछलीको प्रीति प्राप्त नहीं होती।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके साथ प्रतियोगिता और हिंसा कर अर्थ संग्रह करता है, किन्तु उसके द्वारा दूसरे मनुष्योंको प्रीति नहीं होती। श्रीमन्महाप्रभुके भक्त लोग कदापि दूसरे व्यक्तिको उद्वेग नहीं देते। किन्तु प्राकृत व्यक्ति लोग अखण्ड भगवद्-वस्तुके साथ विरोध कर खण्ड वस्तुके साथ विरोध करते हैं। हम लोग कई समय 'वरं देहि', 'धनं देहि', द्विषो जहि' आदि जागतिक लोगोंकी प्रीतिकर बातें कहकर अपनेको और दूसरेको वंचित करते हैं।

कृष्ण सभी जीवोंका सर्वक्षण आकर्षण कर रहे हैं। वे जड़ प्रपञ्चमें हमारे निकट अर्चारूपसे और नाम के रूपसे प्रकटित हुए हैं। कपट व्यक्ति लोग षोड़शोपचार-द्वारा पुत्रपौत्रादि प्राप्त करने के लिए अर्चा-विग्रहकी आराधना करते हैं। किन्तु उनका उद्देश्य ठाकुर सेवाके विनिमयमें ठाकुरके निकट से कुछ प्राप्त करना। यह सेवा नहीं है। जिससे ठाकुरको प्रसन्नता हो, वही सेवा है। जिससे अपनी सुख-सुविधा होती है, उसका नाम भोग है। वैष्णवोंको चित्तवृत्ति इस प्रकार है—

नास्था धर्मे न वसुनिचये
नैव कामोपभोगे,

यद्यद्भव्यं भवतु भगवन्
पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं
जन्मजन्मान्तरेऽपि,
त्वत् पादाम्भोरुहयुगगता
निश्चला भक्तिरस्तु ॥

जो लोग जगतके वैचित्र्यसे मुग्ध हैं, या जो लोग मनोधर्मी हैं, वे लोग यह बात निष्कपट रूपसे कह नहीं सकते। "विनिमयमें मैं कुछ चाहता हूँ"—ऐसी बात अभक्ति या अवैष्णव धर्मकी बात है। किन्तु वर्त्तमान समयमें वैष्णव धर्मके नामपर ऐसा अवैष्णव धर्म ही प्रचलित है, भक्तिके नाम पर अभक्ति की ही चेष्टा सर्वत्र देखी जाती है। यदि हम कपटता कर कोटि जन्म तक अर्चना करें, कोटि जन्म तक मृदंग बजाय, कोटि जन्म तक कीर्त्तन करें और कपटताको ही धर्म कहकर प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करें, तो हमारे ऐसे अर्चन, खोल बजाने और कीर्त्तन द्वारा हम लोग कर्ममार्गके ही पथिक हो पड़ेंगे, हमें भक्ति प्राप्त नहीं होगी। शुद्ध भगवद्भक्त की निष्कपट सेवाके बिना हमारा कोई कल्याण नहीं हो सकता। अर्चना और नाम-आराधना का नाम कर जगतमें कितनी कपटता चल रही है! भगवान् और भगवद्भक्तको ठगना ही भगवद्भक्ति है—ऐसा कुछ लोग समझते हैं।

इस ग्राम की ही बात है। चारसौ वर्ष पहले प्रेमदाता श्रील नित्यानन्द प्रभुके सङ्गी श्रील सुन्दरानन्द प्रभुने इस स्थानमें अवतीर्ण होकर जो प्रचार किया था, इस समय उसीका एक विकृत प्रतिफलन देखा जाता है। अभी सङ्कीर्त्तन-पिता श्रीगौर-नित्यानन्द को प्रीति के लिए हरि-संकीर्त्तन नहीं होता। ओला निवारण, ग्रामकी श्रीवृद्धि, रोग-निवारण आदि आत्मेन्द्रिय-तर्पणपर भोगके लिए ही हरिकीर्त्तनका बाहरी अनुष्ठान मात्र होता है।

भगवान्की सेवा और सेवाका अभिनय दोनों ही अलग अलग बातें हैं। भगवान्के अर्चा-विग्रह की सेवा जिससे भली प्रकार सम्पादित हो, उसके लिए विशेष चेष्टा करना अत्यन्त आवश्यक है। जो कोई व्यक्ति भगवान्की अर्चामूर्त्तिका सेवक नहीं हो सकता। दस रुपयेका कर्मचारी भगवान्की सेवा नहीं कर सकता, बीस रुपये देकर 'नाम' नहीं होता, पचास रुपये दाखिल करनेसे हरिकथाकी वक्तृता नहीं होती, पाठ नहीं होता—उसमें भाषा-चातुरी या लोकरञ्जक आमोद-प्रमोद हो सकता है, वह भक्ति या वैष्णव धर्म नहीं है, उसका नाम भोग या कर्ममार्ग है।

आप लोग जानते हैं कि बुभुक्षा (भोग करनेकी इच्छा) या मुमुक्षा (मोक्ष पानेकी इच्छा) द्वारा जगत् चालित हो रहा है। हम लोग कई समय त्यागीका वेश पहनकर भोगीके निकटसे कुछ भोग प्राप्त करनेके लिए दौड़ पड़ते हैं और भोगी लोग सोचते हैं—"क्या मैं त्यागीके निकटसे भोगकी कोई सामग्री ग्रहण करनेमें समर्थ हो सकूँगा?"

श्री आनन्दतीर्थ मध्व मुनिके चरित्रमें एक आख्यायिका का उल्लेख है। वे एकबार अपने शिष्योंके साथ बदरिकाश्रम

जा रहे थे। महाराष्ट्र प्रदेशके महादेव नामक राजा जनसाधारणके उपयोगके लिए एक पुष्करिणी खुदवा रहे थे, वे आनन्दतीर्थजी को उस रास्तेसे जाते देखकर उनसे पुष्करिणी खोदनेके लिए कहने लगे। कर्मी राजा यह नहीं जानते थे कि साधारणके उपकारार्थ किये जानेवाले कार्यका सम्पादन फालतू व्यक्तियों द्वारा भी हो सकता है किन्तु जो लोग आत्मविद् हैं, उनके हाथमें फावड़ा देनेसे जगतके परम हितमें कमी आ जाती है। जगतमें जो कुछ भी शिल्प, विज्ञान, कृषि, कला आदिकी उन्नति हो रही है, सभी कुछ वैष्णव सेवामें नियोजित होनेपर ही उनकी सार्थकता है। ये सभी वस्तुएँ भोगियों-की सेवामें लगानेसे व्यर्थ श्रम और जगत-विनाश का कारणमात्र होता है। जब तक विष्णुवैष्णव की सेवा सर्वोत्कृष्ट है—ऐसी दृढ़ प्रतीति नहीं होगी, तब तक हमारा कदापि मङ्गल नहीं होगा। अतएव सर्वप्रथम अर्चामूर्त्ति की आराधना करना आवश्यक है। किन्तु अपने उदरभरण या अन्य किसी उद्देश्यके लिए नहीं।

हम लोग सभी जीवोंके द्वार-द्वार पर यही भिक्षा करते हैं कि आप लोग कृपापूर्वक प्रेम-धर्मका उपलब्धि करें। यहाँके वैष्णव-वेशधारियोंका व्यवहार साधारण प्राकृत स्मार्त्त तो क्या, प्राकृत व्यवहारनिपुण व्यक्तियोंका भी समालोचनाका पात्र है। वे कहते हैं कि इन लोगोंका आचार वैष्णव-वोचित होना तो दूर रहे, साधारण मनुष्यो-चित भी नहीं है। अप्राकृत होना तो दूर रहे, प्राकृत व्यक्तियोंकी अपेक्षा भी घृणाके योग्य और राजद्वारमें दण्डनीय है। सब समय मङ्गल पथकी बाहरी रूपरेखा ही मङ्गलका पथ नहीं है। कपटता कर कई व्यक्ति यात्राके (नाटकाभिनयके) दलके नारद मुनि सज सकते हैं। किन्तु अर्चन कार्य यथार्थ रूपसे अच्छे व्यक्ति करें, यथार्थ रूपसे निष्कपट व्यक्ति कीर्त्तन करें; केवल सुर-मान-लय-ताल अच्छी तरहसे जाननेसे ही किसी व्यक्तिके मुखसे हरिनाम नहीं निक-लता। जो व्यक्ति शुद्ध वैष्णव गुरुके पादा-श्रय किये हैं, श्रीगुरुदेवके निकटसे वे ही कीर्त्तनाधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(शरणागति)

१—जीवका स्वभावसिद्ध नित्य धर्म क्या है ?

"शरणागति और आनुगत्य ही जीवका स्वभावसिद्ध नित्य धर्म है।"

—'प्रयास' स० तो० १०।६

२—किस प्रकार शुद्ध भक्तियोग प्राप्त होता है ?

"श्रीमद् गीताके चरम श्लोकमें जिस शरणागति का उपदेश है, उसे लक्ष्य कर सभी इन्द्रियार्थ को भगवत्प्रसादके रूपमें ग्रहण कर कर्माङ्ग और ज्ञानाङ्ग त्याग करते हुए आचरण करने पर शुद्ध भक्तियोग सिद्ध होता है।"

—'अत्याहार', स० तो० १०।६

३—विशुद्ध भजनका मूल क्या है ?

'केवल शास्त्र पढ़कर या सिद्धान्त सुनकर कोई भी व्यक्ति भगवत्कृपा प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता । सब प्रकारके ज्ञान-कर्म प्रयास परित्याग करते हुए भगवानके शरणापन्न होना ही विशुद्ध भजनका मूल है। उसीके द्वारा ही कृष्ण-प्रेमरूप परम पुरुषार्थ प्राप्त होता है।"

—'विशुद्ध भजन' स० तो० ११।७

४—शरणागतिहीन जीवनकी क्या कोई सार्थकता है ?

"शरणागति रहित जीवका जीवन व्यर्थ है। जीव सर्वदा शरणागत होकर कृष्ण-भजन करेंगे।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

५—साधक जीवनका भूषण क्या है ?

"साधकका सम्पूर्ण जीवन ही शरणागति द्वारा ओतप्रोत और मण्डित होना चाहिए।"

—'तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन' स० तो० ११।६

६—वैकुण्ठयात्री वैष्णवोंमें क्या कोई व्यवहारिक दुःख है ?

"वैष्णवोंके वे सभी व्यवहार दुःख वास्तविक दुःख नहीं हैं। किन्तु वैकुण्ठयात्रीके वे दुःख पान्थ दुःखकी तरह अस्थायी हैं एवं वे दुःख सुखपूर्वक बीत जाते हैं।"

—'वैष्णवोंका व्यवहार दुःख' स० तो० १०।२

७—शरणागति कितने प्रकारकी है और प्रत्येकके तीन प्रकारके भेद क्या-क्या हैं ?

"शरणागति छः प्रकार की है—(१) आनुकूल्य संकल्प, (२) प्रातिकूल्य वर्जन, (३) कृष्ण मेरी अवश्य रक्षा करेंगे—ऐसा विश्वास, (४) कृष्ण ही मेरे पालयिता हैं—

ऐसी बुद्धि, (५) आत्म-निक्षेप और (६) कार्पण्य (दैन्य)—ये छः प्रकार की शरणागति ही कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे तीन प्रकारकी हैं।"

—'श्रद्धा और शरणागति', स० तो० ४।६

८—कृष्णको किस प्रकार गोप्तृत्वमें वरण करनेपर कृष्ण-प्रेम प्राप्त होता है ?

"मैं कृष्णका चित्कण नित्यदास हूँ, कृष्ण को छोड़कर मेरा और कोई रक्षाकर्त्ता या पालयिता नहीं है; मैं अति दीन और हीन हूँ। कृष्णनाम श्रवण-कीर्त्तनादि करते करते पूर्वकृत कर्मफल-भोगस्वरूप जीवन-निर्वाह करनेपर अवश्य ही कृष्ण-कृपा प्राप्त करूँगा—इस प्रकार कृष्ण-संसारमें स्थिति प्राप्त होने पर हम लोग कृष्ण-प्रेम फल प्राप्त करते हैं।"

—वृ० भा० तात्पर्यानुवाद

९—भक्तके लिए कृष्ण-कृपा निर्भरता किस प्रकार वांछनीय है ?

"कृष्ण मुझ पर अभी या एक सौ वर्ष पीछे किसी जन्ममें अवश्य कृपा करेंगे। मैं दृढ़तापूर्वक उनका चरण आश्रय करूँगा, कभी उन्हें नहीं छोड़ूँगा—इस प्रकारका धैर्य भक्ति-साधकोंके लिए नितान्त आवश्यक है।"

१०—आत्म-निक्षेप किसे कहते हैं ?

"आज से मैं अपना नहीं हूँ, मैं कृष्णका हूँ—ऐसी बुद्धिका नाम आत्मनिक्षेप है।"

—'श्रद्धा और शरणागति' स० तो० ४।८

११—वास्तव सत्य किसके निकट प्रकाशित होता है ?

"The Bhagabat teaches us that God gives us truth when we earnestly seek for it. Truth is eternal and unexhausted. The soul receives a revelation when it is anxious for it."

—The Bhagabat : Its Philosophy, Its Ethics and Its Theology,

अर्थात् भागवत यह बतलाता है कि ईश्वर हमें सत्य का सन्धान तब बतलाते हैं जब हम उसके लिए निष्कपट रूपसे चेष्टा करते हैं। सत्य सदा वर्त्तमान है और वह अक्षय है। जीव प्रकाश तब प्राप्त करता है, जब वह उसके लिए व्याकुल हो पड़ता है।'

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

★

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ—११)

श्रीनारद गोस्वामीने कहा है—उत्तमः-श्लोक भगवानका गुणकीर्त्तन या लीला-कीर्त्तन ही मनुष्योंकी तपस्या, वेदाध्ययन, सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठित यज्ञ, सम्यक् प्रकारसे उच्चारित वेदमंत्र, ब्रह्मज्ञान और उत्तम दान आदि महान् कार्योंका नित्य एवं सर्वोत्तम फल है।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने भी बतलाया है—

श्रुतमप्यौपनिषदं दूरे हरिकथामृतात् ।
यत्र सन्ति द्रवच्चित्तकम्पाश्रुपुलकादयः ॥

हरिकथामृतसे शुद्ध एवं श्रद्धालु जीव-हृदयमें जो चित्तद्रवता उपस्थित होती है और कम्प, पुलक, अश्रु आदि अप्राकृत सात्त्विक भाव-विकारादि प्रकटित होते हैं, वे सभी लक्षण औपनिषद ब्रह्मज्ञानमें नहीं होनेके कारण वह दूरमें अथवा परोक्षमें रहें अर्थात् उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

भक्ति प्रभावसे ही ज्ञान सिद्ध होता है, यह कहकर ज्ञान मार्ग का उपसंहार किया जा रहा है—

एवं जिज्ञासयापोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ।
उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥
(भा० ११ । ११ । २१)

इस प्रकारसे जिज्ञासा अर्थात् विचार बलसे आत्मामें अनात्म देह और मनकी बहुत प्रकार भ्रममय धारणाओंका परित्याग कर मेरे कथादिके द्वारा शोधित मनको मुझमें समर्पण कर विषय भोगसे विरत होना चाहिए।

"आत्माका बन्धन या मोक्ष विचार बहिरंगा शक्ति मायाके धर्म सत्त्वादि गुणसे उत्पन्न हैं, वस्तुतः ऐसा विचार नहीं है"—इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार विचार 'जिज्ञासा' शब्दसे जानना चाहिए। आत्मामें शुद्ध जीवमें। नानात्व अर्थात् देवत्व-मनुष्यत्व आदि भेद—ये सब परित्याग कर लीला-कथादि श्रवण द्वारा चित्तको ब्रह्मस्वरूप मुझमें धारणा कर भोगसे विरत होना चाहिए।

इस प्रकार ज्ञानमिश्रा भक्तिका उपदेश कर उसका भी अनादर कर अनुषङ्ग क्रमसे सम्बन्ध ज्ञानमयी शुद्ध भक्तिका उपदेश दे रहे हैं—

यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ।
मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥
(भा० ११ । ११ । २२)

निर्विशेष ब्रह्ममें जब मन स्थिर कर धारणा करनेमें असमर्थ हो रहे हो, तब इस लोक या परलोकमें फलभोग वांछारहित होकर सभी प्रकारके कर्म मुझमें (भगवान्में) समर्पण या न्यस्त कर अर्थात् भक्ति-उद्देशक सभी कर्मोंका सम्यक् प्रकारसे आचरण कर भक्तिद्वारा कृतार्थ होओ।

श्रद्धालुर्मे कथा श्रृण्वन् सुभद्रा लोकपावनीः ।
गायन्ननुस्मरन् कर्म जन्म चाभिनयन् मृहुः ॥
मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रयः ।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥
(भा० ११ । ११ । २३-२४)

हे उद्धव ! मैं सनातन नित्य पुरुष हूँ। मेरे प्रति श्रद्धालु व्यक्ति मेरी जगत् पवित्र-कारिणी मंगलमयी चरित्र कथा श्रवणपूर्वक उस कथा का गान और अनुस्मरण एवं मेरी जन्म-लीलादिका अभिनय कर मेरे एकान्त आश्रित होकर मेरे उद्देशसे धर्मार्थ-काम सभी कार्योंका आचरण करते करते मुझमें निश्चला भक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेंगे।

अर्थात् मेरे उद्देश्यसे सभी कर्म आचरण-पूर्वक मेरी सेवा करते करते मुझको छोड़कर दूसरे सभीका आश्रय परित्याग कर अन्तमें श्रवणादि लक्षणमयी एवं सदैव अव्यभिचारिणी भक्ति प्राप्त करनेके कारण मेरे शुद्धभक्त कैवल्यादि मुक्तिका भी तिरस्कार करते हैं। भजनीय वस्तुको अनित्य समझकर भक्तिको अनित्या नहीं मानना चाहिए। इसलिए सनातन शब्दका प्रयोग है। भजनीय वस्तु भगवान सनातन हैं, इसलिए भगवद् भक्ति भी सनातनी या निश्चला है।

सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता।
स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥

(भा० ११। ११। २५)

किस प्रकार भक्तिपथमें प्रवृत्ति या निष्ठा होगी ? उसके उत्तरमें कहते हैं—श्रद्धालु व्यक्ति साधुसंगसे प्राप्त भक्तिद्वारा मेरी उपासना करेंगे। अन्तमें साधुओंके प्रदर्शित परम पद अनायास ही प्राप्त कर सकेंगे।

मेरे ब्रह्माकार, भगवदाकार आदि समस्त स्वरूप विज्ञान ही प्राप्त करते हैं, यह 'स वै' श्लोकार्द्धमें कह रहे हैं। 'अञ्जसा' अर्थात् भक्तिके अनुषङ्ग क्रमसे ही। 'पद' का अर्थ स्वरूप है। भक्तियोग पूर्वसिद्ध, भगवत्कर्तृक प्रवर्त्तित और स्वयं ही मुख्य है। भक्तिको छोड़कर दूसरे-दूसरे सभी पथ मात्र ही नितान्त अर्वाचीन या नवीन हैं व्यक्तिगत रुचि अनुसारसे प्रवर्त्तित हैं। इसलिए नितान्त तुच्छ हैं। उद्धवके प्रश्नद्वारा यह विषय मीमांसा कर रहे हैं—

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥
भवतोदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षितः।
निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥

(भा० ११। १४। १-२)

हे कृष्ण ! ब्रह्मवादी ऋषि लोग बहुत प्रकारके मंगलपथ की बात कहते हैं। इस समय मेरा यही प्रश्न है कि उनमें से सभी प्रधान हैं या एक ही मात्र प्रधान है ? हे प्रभो ! आपके द्वारा उपदिष्ट या कथित भक्तियोग किसी भी वस्तु या साधनकी अपेक्षा नहीं रखता। इस भक्तियोगद्वारा सभी प्रकारके जड़ सङ्ग दूर होकर आपमें ही मन आविष्ट हो जाता है।

श्रीउद्धवजीके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण कह रहे हैं—

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥

(भा० ११। १४। ३)

हे उद्धव ! भगवदात्मक धर्म 'वेद' नामक भगवद्वाक्यमें ही वर्त्तमान है। कालक्रमसे वह प्रलयमें नष्ट हो गया था। पश्चात् सर्वप्रथम मैंने उसे ब्रह्माको बतलाया था।

भक्ति ही उन सब श्रेयः साधन समूहोंमें सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि वह महाफल रूप प्रेम प्रदान करती है। जो सभी जीव आकाश-कुसुम तुल्य स्वर्गादि फलोंमें भोगबुद्धिविशिष्ट हैं, वे अपने अपने स्वभाव अनुसार भक्तिको

छोड़कर दूसरे पथको प्रधान माननेपर भी वे नितान्त तुच्छ फल देनेवाले हैं, यही बात कह रहे हैं।

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचिः ॥

भक्तिके प्राधान्य होने पर भी सर्वश्रेष्ठ पथ भक्तिका अनादर कर भक्तिको छोड़कर तथाकथित मंगलोपाय निर्द्धारणका कारण उल्लेख कर रहे हैं—मेरी दैवी मायासे मोहित बुद्धि होकर कुछ व्यक्ति अपने अपने कर्म और रुचि अनुसार नाना प्रकारके मंगलोपायकी बात कहते हैं।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥
(११ । १४ । २०)

हे उद्धव ! तीव्र साधन भक्तियोग द्वारा मुझे जिस प्रकार वशमें किया जा सकता है, उस प्रकार आसन-प्राणायामादिरूप योग, तत्त्वविचाररूप सांख्य, अहिंसादिरूप धर्म, वेद-पाठ, तपस्या और संन्यास—ये सभी उपायोंसे नहीं किया जा सकता। अर्थात् भक्ति द्वारा ही मैं जिस प्रकार वशीभूत होता हूँ, अन्य साधन मुझे उस प्रकार वशीभूत नहीं कर सकते।

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥
(भा० ११ । १४ । २२)

सत्य और दयावृत्तिविशिष्ट धर्म (निकाम धर्म) एवं वैराग्य या तपस्यामूलक विद्या (शास्त्रीय ब्रह्मज्ञान) आदि मेरे प्रति भक्तिहीन चित्त को सम्यक् प्रकारसे शुद्ध या पवित्र नहीं कर सकते।

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम् ॥
(भा० ११ । १४ । २६)

किन्तु भक्तिलक्षण समूह द्वारा मुझे प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार अञ्जन प्रयोग करनेसे चक्षुसे सूक्ष्मवस्तु देखा जाता है, उसी प्रकार जीव-चित्तका भोगवासना-मल मेरी पुण्यकथाके श्रवणकीर्त्तनादि भजन प्रभावसे परिमार्जित होने पर शुद्ध जीव मेरे स्वरूपका दर्शन कर सकते हैं।

यदि कहा जाय "ब्रह्मविदाप्नोति परं", "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति" अर्थात् ब्रह्मवित् व्यक्ति ही परब्रह्मको प्राप्त करते हैं, उस पुरुषोत्तमको जानकर ही जीव मृत्युसे उत्तीर्ण हो सकता है—इत्यादि श्रुति वचनानुसार ज्ञान द्वारा ही अविद्यासे निवृत्ति होकर ब्रह्मकी प्राप्ति होती है (श्वेताश्वर ३ । ८ और ६।४५); इसलिए भक्तियोग की आश्वयकता क्या है ? उसी के उत्तरमें कह रहे हैं—मेरे पवित्र कथा-समूहके श्रवण और कीर्त्तनादि द्वारा ही आत्मा अर्थात् चित्त परिमार्जित या शोधित होता है। पूर्वोक्त ज्ञान भक्तिका ही अवान्तर व्यापार (क्रिया) है। वह शुद्ध भक्तिसे स्वतन्त्र नहीं है।

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ।
कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥
(भा० ११ । २० । २९

कर्म, ज्ञान और भक्तियोगका विषय एवं तत्तदधिकारमें विभिन्न कारण-समूहोंका वर्णन कर कर्म और ज्ञानका अनादर कर भक्तिका ही एकमात्र अभिधेयत्व कह रहे हैं।

उनमें ज्ञानाभ्यासका अनादर करने जाकर ज्ञानाधिकारके कारणस्वरूप वैराग्य-अभ्यास का अनादर कर रहे हैं—हे उद्धव ! मेरे द्वारा कथित भक्तियोग अवलम्बनपूर्वक जो मुनि नित्य काल मेरा भजन करते हैं, मैं उनके हृदय मध्यमें अवस्थित होने के कारण उनके हृदयस्थित सभी काम विनष्ट हो जाते हैं।

भिद्यते हृदय-ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥

(भा० ११ । २० । ३०)

ज्ञानाभ्यासका अनादर करते हुए कहते हैं—हे उद्धव ! मैं निखिल वस्तुओंकी आत्मा हूँ। मुझे देखने पर हृदय-ग्रन्थि रूपी जड़ीय अहंकार निर्भिन्न होता है, सर्वप्रकारके संशयों का छेदन हो जाता है एवं प्रारब्ध-अप्रारब्धादि कर्मफल भोग सम्पूर्ण रूपसे विनष्ट हो जाते हैं।

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥

(भा० ११ । २० । ३१)

अतएव इस लोकमें जो मुझमें भक्तियुक्त और समर्पितचित्त हैं, ऐसे भक्तियोगियोंके लिए कर्मकी बात तो दूर रहे, ज्ञान और वैराग्य भी प्रायः मंगलजनक नहीं होते।

इस व्यवस्था द्वारा तीन प्रकारके अधिकार कहे गये हैं। उनमें भक्ति ही तदितर ज्ञान और कर्म की अपेक्षासे रहित है। कर्म और ज्ञान भक्तिकी अपेक्षा रखनेके कारण भक्तिका श्रेष्ठत्व है।

यहाँ प्रायः शब्द ग्रहणका तात्पर्य यह है कि, भगवद् भजन करनेवाले व्यक्तियोंके लिए ज्ञान और वैराग्य अभ्यासका प्रयोजन नहीं है। उस स्थलमें मुक्ति पथके अति निकट अवस्थित होने पर भी जिस प्रकार किसी किसी की क्रमबुद्धिमें प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार "जो ब्रह्मभूत और प्रसन्नचित्त होकर अन्तमें मेरी परा भक्ति प्राप्त करते हैं" श्रीमद्गीताके इस वाक्यानुसार यदि क्रम भक्तियोगमें प्रवृत्ति हो, तो कोई हानि नहीं है। समस्त फलोंमें श्रेष्ठ फल जो कृष्ण प्रेम है, वह प्रेम लक्षण ही भक्तिका निजस्व फल है। भक्तिके उसे प्रेम-लक्षणको प्राप्त करनेके लिए ज्ञानादि की कोई भी अपेक्षा नहीं है।

यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति ॥

(भा० ११ । २० । ३२-३३)

ज्ञानादि फल यदि पृथक् पृथक् साध्य हों तो ज्ञानादि की अपेक्षा नहीं है। यज्ञादि कर्म, तपस्या, ज्ञान-वैराग्य, योग, दान धर्म एवं तीर्थयात्रा-व्रतादि दूसरे-दूसरे कल्पित मंगलोपाय समूह द्वारा जो कुछ भी प्राप्त होते हैं, वे समस्त ही एवं अन्याभिलाष रहित होकर भी यदि कदापि स्वर्गादि भोग, ब्रह्मानन्दादि मोक्ष-सुख या मेरे वैकुण्ठादि धाम आदिकी किसी प्रकार से वांछा भी हो, तो मेरे भक्त मेरे भक्तियोगके प्रभावसे वे सभी ही अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं।

इतर उपाय अर्थात् तीर्थयात्रादि या व्रतादि द्वारा भविष्यत्में जो सभी फल प्राप्त होते हैं, वे समस्त ही मेरे भक्तियोगके प्रभावसे अनायास ही प्राप्त होंगे।

—त्रिदन्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी शुभाविर्भाव तिथि-पूजाके उपलक्ष्यमें दीन-हीन दासाधमकी क्षुद्र

पुष्पांजलि

हे परमाराध्यतम गुरुदेव ! श्रुति, स्मृति, उपनिषद् और पुराणादि शास्त्रोंमें जिनको 'भगवत् प्रकाश-विग्रह' 'भगवदभिन्नतनु' और 'मुकुन्द श्रेष्ठ' आदि कहा गया है, उन आपके अखिल लोकवन्द्य चरणकमलोंमें भवदीय शुभाविर्भाव तिथि भक्तिजननी माघी कृष्णा तृतीयाके दिनमें दासाधम अपने हृदय की श्रद्धा पुष्पांजलि अर्पण कर रहा हूँ।

हे करुणैकसिन्धो ! हे अनाथबन्धो ! आपकी कृपासे भगवत् कृपा है। आपकी कृपा न होने पर—आपके असन्तुष्ट होनेसे भगवत्कृपा असंभव है । भगवान कदापि असन्तुष्ट होने पर भी आप प्रसन्न होने से बिगड़ी बना सकते हैं, भवसागरसे पार करा सकते हैं । परन्तु आपके चरणोंमें अपराध होने पर स्वयं भगवान भी क्षमा नहीं करते। ऐसे हे कारुण्यघन विग्रह ! आप मुझ अगतिके एकमात्र गति हैं । आपके श्रीचरणोंमें मैंने अनेकों अपराध किए हैं। आप क्षमा कर मुझे अपने श्रीचरणोंकी धूलि रूपमें ग्रहण करें। आपके सिवा मुझसा अधम, मूढ़, पापी और अपराधीको कौन भव-सागर से पार करा कर भगवत्पदारविन्दोकी सेवा प्रदान कर सकता है ?

हे गुरुदेव ! मैंने आपके प्रियजनोंसे ऐसा सुना है कि श्रीबलदेव प्रभु स्वयंरूप श्रीकृष्णके प्रकाश विग्रह हैं। वे बलदेव प्रभु महासंकर्षण, कारणाब्धिशायी, गर्भोदशायी, क्षीरोदशायी और शेष—इन पाँच भगवत्स्वरूपोंसे, धाम, छत्र, पादुका, चामर, व्यजन, अलंकार, सिंहासन, वसन, आसन आदि बनकर तथा किसी न किसी प्रकारसे सभी रसोंमें अपने प्रभु रसिकशेखर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें सदैव तत्पर हैं । उन्हीं सर्वदेववन्द्य श्री बलदेव प्रभुके प्रकाश-विग्रह आप इस धराधाममें जीवों पर कृपा करनेके हेतु प्रकट हुए थे।

स्वयं कृष्ण यदि अपना तत्त्व किसी को न जनायें, तो कोई भी किसी प्रकारसे उनको जान नहीं सकता । ये कृष्ण ही अपने को जनाने के लिए अन्य प्रकाश-विशेषमें गुरुके रूपमें आविर्भूत हैं । कृष्णकी भाँति श्रीगुरुदेवको भी अपनी चेष्टासे कोई नहीं जान सकता। वे तो एकमात्र सेवा स्निग्ध शरणागत शिष्योंके हृदयमें अपने तत्त्वको स्फूर्त्ति कराते हैं। गीतामें भी उनको जाननेके लिए तीन उपाय कहे गये हैं—प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा। परन्तु शिष्य संतापहारी सद्गुरु संसारमें सुदुर्लभ हैं । अधिकतर शिष्योंके धनादिका अपहरण करनेवाले असद्गुरु ही संसारमें अधिक पाये जाते हैं—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य वित्तापहारकाः ।
दुर्लभः सद्गुरुर्देवि शिष्यसंतापहारकः ॥

शास्त्रोंमें ऐसे असत् गुरुका परित्याग कर सद्गुरु-चरणाश्रय करने को आज्ञा दी गई है।

सद्गुरु शिष्य का भगवानके साथ सम्बन्ध करा देते हैं । जैसे पुरोहित विवाहके समय स्त्री-पुरुष का परस्पर सम्बन्ध करा देते हैं ।

श्रीगुरुदेव किसी भी सांसारिक विषयोंका लोभ नहीं करते । वे शिष्य का सर्वदा कल्याण करते हैं। अमल पुराण श्रीमदभागवत में स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि मैं स्वयं अकर्त्ता होकर भी अनासक्त होकर लोक कल्याणके लिए कर्मका आचरण करता हूँ। उसी प्रकार जो लोग विषयोंमें अनासक्त होकर कर्त्तव्य कर्म करते हैं, गुरुकुलमें वास कर भगवत्तत्व का ज्ञान प्राप्त कर भवसागर को पार कर लेते हैं तथा श्रीगोलोक वृन्दावन में मेरी नित्यसेवा प्राप्त कर लेते हैं।

जन्म देनेवाले माता-पिता प्रथम गुरु हैं, उपनयन प्रदान कर शास्त्रों में अधिकार देने वाले गुरु हैं तथा मेरे (भगवानके) समान पूज्य सद्गुरु जो भगवत्तत्वका ज्ञान कराकर जीव-हृदयमें सम्बन्ध ज्ञानका उदय कराकर मेरी नित्यसेवा प्रदान करते हैं, वे ही तृतीय सर्वोत्तम श्रील गुरुदेवरूपी मेरे स्वरूप का जो व्यक्ति आश्रय ग्रहण करते हैं, वे सुखशान्तिसे भवसागर पार कर लेते हैं और परमार्थ का यथार्थ फल प्राप्त करते हैं। सर्वभूतान्तर्यामी मैं गुरु-शुश्रूषासे जैसा प्रसन्न होता हूँ, वैसा वर्णाश्रम धर्म पालनसे नहीं । गुरु कृपासे—गुरुके हृदयमें आविर्भाव होनेसे सर्वमनोरथ पूर्ण होते हैं। गुरुदेव प्रदत्तविद्या ही परा विद्या है। इसी पराविद्यासे मैं पूर्णरूपसे वशीभूत होता हूँ।

हे पतितपावन गुरुदेव ! मेरी यह क्षुद्र पुष्पांजलि आपके चरणारविन्दोंमें अर्पित है। कृपया आप इसे अङ्गीकार करें । आपके श्रीचरणोंमें मैंने अनेकों अपराध किये हैं। आप उन्हें क्षमा करें। मैं जैसा भी क्यों न हूँ, आपका ही शिष्य हूँ। आपके सिवा मेरी दूसरी कोई गति नहीं है। हे देव ! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

—दीनहीन दासाधम मुरलीमोहन

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण

(१) **प्रकाशनका स्थान**—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा ।

(२) **प्रकाशनकी अवधि**—मासिक ।

(३) **मुद्रक का नाम**—श्री हर्षगुप्त ।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (भारतीय)।
पता— राष्ट्रीय प्रेस, डॉम्पयर नगर, मथुरा ।

(४) **प्रकाशकका नाम**—श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी ।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)।
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा ।

(५) **सम्पादकका नाम**—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज ।
राष्ट्रगत-सम्बन्ध—हिन्दू (गौड़ीय वैष्णव)
पता— श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ ।

(६) **पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी**—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराज ।
समिति रजिस्टर्ड ।

मैं, कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं ।

—कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी

१५ अप्रेल १९७१

भगवन्नामोच्चारणसे अजामिल को भगवत्प्राप्ति

मानव जीवन अनेक विचित्राओंसे परिपूर्ण है। वह क्या है – इस रहस्य को अभी तक वह समझ नहीं पाया है। न दूसरोंको ही यथार्थ रूपसे समझानेमें समर्थ हुआ है। उसके द्वारा किस वक्त क्या कार्य बन जायगा, उसका आदि-अन्त-मध्य कैसा होगा, यह, उसके लिए भी और निकटतम व्यक्तिके लिए भी अज्ञात-सा बना रहता है।

एक ओर मानव श्रेष्ठसे श्रेष्ठतम कार्य भी करता-सा दृष्टिगोचर होता है, तो दूसरी ओर ज्ञात-अज्ञात रूपसे ऐसे जघन्य पाप भी कर डालता है, जिनके निवारणके लिए प्रायश्चित्तादि न तो शास्त्रोंमें विहित है, न लोकमें ऐसा को कठोर दण्ड ही। प्राणीको विशेषतः सत्कर्म का फल दैव किसी न किसी रूपसे यहीं मिल जाता है। यदि किसी कारणवश नहीं मिलता तो अपर जन्ममें मृत्युके पश्चात् भयंकर यातनापूर्ण नरकोंमें उसे भोगना पड़ता है जिसकी परिकल्पना भी अतीव कठिन एवं हृदयद्रावक है। अनेक व्यक्तियोंको अपने अत्युत्कट पापोंका भोग, वे भले ही वर्त्तमानमें या पूर्व जन्ममें किये हुए हों, अनेक कष्टों, दीर्घकालीन बीमारियों, निर्धनता, अपमान आदिके रूपमें भोगने पड़ते हैं, जिनका निवारण दैवात् पापोंके क्षय हो जानेसे होता है। परन्तु कभी वह अपने जीवनमें यातनाओंको सहता हुआ मृत्युका ग्रास बनता है, स्वयं तो दुःखी होता ही है, साथ ही साथ रोगावस्था या दुःखावस्थामें पारिवारिक एवं निकटस्थ व्यक्तियोंके लिए भी कष्ट का कारण बन जाता है। अतः अपने जीवनकालमें ही सावधानीसे अपनी विवेकवती बुद्धिके द्वारा सत्कर्म ही करने चाहिए। यदि अज्ञानसे या परिस्थितिवश कोई पाप या अपराध बन जाय, तो पापोंकी गुरुता और लघुताका विचार कर प्रायश्चित्तके रूपमें अनुताप करते हुए भगवन्नाम ग्रहण कर उन पापोंका निवारण करने की चेष्टा करनी चाहिए। अपने भविष्यत्के जीवनको समुचित रूपसे अपराध आदिसे रहित होकर बितानेका सत् प्रयत्न करना चाहिए। अपने कामकोधादि आवेगोंपर नियन्त्रण करना चाहिए। एक मर्मज्ञ चिकित्सक रोगोंकी गुरुता लघुतापर विचार कर रोगीकी चिकित्सामें प्रयत्नशील होता है और रोगी भी ऐसा कार्य करता है, जिससे उसके रोगों का निवारण हो।

पर यह एक आश्चर्यकी बात है कि समय-समयपर मनुष्य राजदण्ड, सामाजिक दण्ड, अनेक यातनाओं एवं विभीषिकाओंसे सन्त्रस्त प्राणियोंको देखकर शास्त्रोक्त नरकगमनादि की चर्चाएँ सुनकर भी पापोंसे बारम्बार अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है। ऐसे कर्मोंमें प्रवृत्त होता है जो अव्यवहार्य होते हैं, अपराधके कारण बनते हैं। ऐसी अवस्थामें पापोंका प्रायश्चित्त भी असम्भव सा हो जाता

है। यह निर्विवाद है कि जब तक उसमें अज्ञान का आवरण रहेगा, इन्द्रिय-विषय भोगकी मदोन्मत्तता रहेगी, तब तक उसकी पाप वासनाएँ सर्वथा नष्ट नहीं हो सकतीं। इसलिए आत्मज्ञान या भक्तिकी अपेक्षा है।

एक रुग्ण मानव बहुमूल्य उत्तम औषधिका सेवन तो करता है,पर वह सुपथ्य और नियमोंका पालन नहीं करता, तो उसकी रोग निवृत्ति दुःसाध्य हो जाती है। उसी प्रकार असदाचरण करनेवाले और भगवद्विमुख इन्द्रियलोलुप अज्ञानीके भी पापांकुर निर्मूल नहीं होते। अतः आधिव्याधि की निवृत्ति, पापों, अपराधों के क्षयके लिए, या वे उत्पन्न ही न हों, इसके लिए भक्ति तत्त्व का ज्ञान अवश्य ही संग्रह करना चाहिए।

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च।
त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च॥
देहवाग्बुद्धिजं धीराः मंजाः श्रद्धयान्विताः।
क्षिपन्त्यघं महदपि वेणगुल्ममिवानलः॥
केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः॥
न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपादिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया॥
(भा० ६।१।१३-१६)

जैसे बाँसोंके झुरमुटमें लगी आग बाँसोंको जला डालती है, वैसे ही धर्मज्ञ और श्रद्धावान् धीर पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियदमन, मनकी स्थिरता, दान, सत्य, बाहर-भीतरकी पवित्रता, यम, नियम आदि साधनोंसे मन, वाणी, शरीर द्वारा किये बड़े से बड़े पापोंको नष्ट करते हैं।

भगवानकी शरणमें निवास करनेवाले भक्तजन जो अत्यन्त विरले होते हैं, वे केवल भक्तिके द्वारा अपने सारे पापोंको उसी प्रकार विनष्ट कर देते हैं जिस प्रकार सूर्य कुहरेको। यही विद्वानोंका सर्वश्रेष्ठ मत है कि पापी पुरुषकी शुद्धि भगवानको आत्मसमर्पण करनेसे, उनकी भक्ति करनेवाले भक्तोंके सेवनसे होती है, वैसे केवल तपस्या आदिसे नहीं होती।

जगतमें भक्तिकी ही सर्वश्रेष्ठता, भयराहित्य, कल्याणकारी स्वरूपता है। क्योंकि इस मार्गमें भगवद्परायण सुशील साधुजन चलते हैं। जैसे मद्यसे पूरित घटको गङ्गादि नदियाँ पवित्र नहीं कर सकतीं, वैसे ही बड़े-बड़े प्रायश्चित्त आदि बारम्बार करने पर भी भगवद्विमुख मनुष्यको पवित्र करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं।

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः॥
(भा० ६।१।१-६)

जिन्होंने अपने भगवद् गुणानुरागी मन मधुकरको श्रीकृष्णके चरणारविन्द मकरन्द का एकबार भी पान करा दिया है, उन्होंने सारे प्रायश्चित्त कर लिये। वे स्वप्नमें भी यमराज और उनके पाशधारी दूतोंको

नहीं देखते । फिर नरककी तो बात ही क्या है ?

इसी प्रसङ्गको दृढ़ता प्रदान करनेके लिए एक अजामिलकी ऐतिहासिक रोचक कथा महात्माओंने बतलाया है, जिसमें भगवान् विष्णु और यमके दूतोंका संवाद है।

प्राचीन कालमें अजामिल नामक ब्राह्मण बड़ा शास्त्रज्ञ, शीलवान्, सदाचार-सम्पन्न, सर्वसद्गुणोंका आकार था । ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और सभी प्रकारसे पवित्रता युक्त था । उसने समयानुसार गुरु, अग्नि, वृद्ध, अतिथि सभी की सेवा श्रद्धाभक्तिसे की थी । अहंकारका उसमें अभाव था । वह समस्त प्राणियोंका हितैषी, उपकारनिरत, मितवाक् और परदोष दर्शनसे रहित था।

एक दिन वह पिताके आदेशसे वनमें गया और वहाँसे फलफूल समिधाएँ लेकर लौट रहा था कि—

आते समय मार्गमें उसने एक आचरण-भ्रष्ट कामी निर्लज्ज मद्यपी को देखा। वह मद्य पीकर एक मतवाली वेश्या (दासी) से विहार कर रहा था । वाराङ्गना के उभय-नयन मदभरे थे । वह अर्धनग्नावस्थामें थी। शूद्र कभी वेश्याके साथ गाता था, कभी नाचता था, कभी हँसता था, और विविध प्रकारकी चेष्टाएँ कर उसे प्रसन्न कर रहा था। अजामिल पर शूद्र एवं कुलटा के आलिङ्गनादि व्यवहारों का कुप्रभाव पड़ा। वह काममोहित हो गया। धैर्य और ज्ञानकी शक्तिसे उसने अपने मनको रोकनेका बड़ा ही प्रयत्न किया पर वह असफल रहा। काम पिशाचने वेश्याको निमित्त बनाकर उसके मनको ग्रस लिया। उसकी सदाचार-शास्त्र-सम्बन्धी चेतना नष्ट हो गई। वह अब मन ही मन वेश्या का चिन्तन करने लगा और अपने धर्मसे विमुख हो गया । एकबार की काम लीला या चेष्टा का निरीक्षण भी ऐसा मन पर दुष्प्रभाव डाल देता है। फिर जो जन निरन्तर इस प्रकारकी चर्चाएँ सुनते एवं अश्लील दृश्य देखते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ?

धीरे धीरे अजामिलने वस्त्राभूषणादि एवं विविध सामग्रियोंद्वारा उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया और कामावेशमें उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति उसे समर्पित कर दी। स्वच्छन्दचारिणी कुलटाके वशीभूत होकर नवयुवती विवाहिता पत्नीका परित्याग कर दिया। वह पापाचारमें पूर्णतः निरत हो गया। कुबुद्धिके अधीन हो न्याय-अन्यायसे जहाँ भी कहीं धन मिलता, संग्रह करता । कभी पथिकोंको लूटता, कभी किसीको धोखा देकर उसका सर्वस्व अपहरण कर लेता और उसका उपयोग वेश्याको प्रसन्न करनेमें करता । उसके कुटुम्बका पालन करता। शास्त्रोंकी मर्यादाओंका उल्लंघन कर सत्पुरुषों से निंदित आचरण करता। वेश्याके मलसमान अन्नसे अपना जीवन व्यतीत करता। वह अपने कुटुम्बका, अपने बच्चोंका लालन-पालन पोषण भी अन्यायसे, जघन्य कुकर्मके द्वारा प्राप्त धनसे, प्राणियोंको कष्ट पहुँचाकर करता। इस प्रकार उसके पापमय जीवनका बहुत बड़ा भाग अठ्ठासी वर्ष पूर्ण हो गया। अजामिलके दस पुत्र थे। उनमें सबसे छोटेका नाम नारायण था। माता पिता उससे बहुत प्यार करते थे । वृद्ध अजामिलने अत्यन्त

मोहके कारण अपना सम्पूर्ण हृदय अपने पुत्र नारायण को समर्पित कर दिया था।

संबद्धहृदयस्तस्मिन् अर्भके कलभाषिणि ।
निरीक्षणमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥
भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः ।
भोजयन् पाययन् मूढो न वेदागतमन्तकम् ।
स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ।
मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥
(भा० ६ । १ । २५ से २७)

वह अपने बालककी तोतली बोली सुन सुनकर तथा बालसुलभ खेल देख-देख फूला नहीं समाता था । जब वह खाता, उसे भी खिलाता । जब पानी पीता, तो उसे भी पिलाता। इस प्रकार वह अतिशय मूढ हो गया था। उसे इस बातका पता ही नहीं चला कि मृत्यु मेरे शिर पर आ पहुँची है। उसके इस प्रकार जीवन बिताते बिताते मृत्युका समय आ पहुँचा। तब वह अपने पुत्र नारायण के सम्बन्धमें ही सोचने विचारने लगा।

इतनेमें अजामिलने देखा कि उसके सामने तीन भयानक यमदूत खड़े हैं। उनके हाथोंमें फाँसी है। मुँह टेढ़े-मेढ़े हैं। शरीरके रोम खड़े हैं । उस समय बालक नारायण वहाँसे कुछ दूरी पर खेल रहा था। यमदूतों को देखकर वह अत्यन्त व्याकुल हो गया और उसने उच्च स्वरसे पुकारा "नारायण"। इससे भगवान्के पार्षदोंने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी नारायणका नाम ले रहा है। उनके नामका कीर्तन अन्त समय में कर रहा है। अतः वे भी बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचे। इस ओर यमराजके दूत दासीपति अजामिलके शरीरमें से उसके सूक्ष्म शरीरको खींच रहे थे । विष्णु दूतोंने आगे बढ़कर बलपूर्वक उन्हें रोका । इस पर यमदूतोंने उनसे कहा—आप धर्मराजकी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले कौन हो ? आप किसके पार्षद हो ? हमें रोकने का आपका कारण क्या है ? हमें अपना पूरा पूरा परिचय दीजिये क्योंकि हम आप लोगोंके सुन्दर स्वरूप, मनोरम शृङ्गारसे तथा करकमलोंमें धारण किये हुए शंख-चक्रादि आयुधोंसे अधिक प्रभावित हैं । हम यह भी देख रहे हैं कि आप लोगोंके तेजोमय प्रकाशसे दिशाओंका अन्धकार दूर हो रहा है।

ऐसा यमदूतोंके कहने पर हँसते हुए मेघनाद गम्भीर गिरासे विष्णुदूत बोले—यदि तुम सचमुच धर्मराजके आज्ञाकारी सेवक हो, तो हमें धर्मका तत्व सुनाओ, दण्डके पात्र कौन होते हैं, मनुष्योंमें सभी पापाचारी दण्डनीय हैं, अथवा उनमें से कुछ ही ?

इस पर यमदूत कहने लगे—हे महाभागवतों ! इस सम्बन्धमें जैसा हमने सुना है वैसा ही यथार्थतः आपके द्वारा पूछने पर हम प्रस्तुत करते हैं—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम ॥
(भा० ६ । १ । ४०)

वेदोंने जिन कर्मोंका विधान किया है, वे धर्म हैं । और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं।

वेद स्वयं भगवान्के स्वरूप हैं। वे उनके स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास एवं स्वयंप्रकाश हैं। ऐसा हमने सुना है।

जगतके रजोमय, तमोमय, सत्वमय सभी पदार्थ, सभी प्राणी अपने परम आश्रय भगवान्में ही स्थित हैं। वेद ही गुण, नाम,

कर्म, रूप आदि के अनुसार उनका यथोचित विभाजन करते हैं।

जीव शरीर अथवा मनोवृत्तियों से दिन रातमें जितने कर्म करता है, उसके साक्षी हैं—

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः संध्याहनी दिशः ।
कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥
एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ।
सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥
सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ।
कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान् न ह्यकर्मकृत् ॥
(भा० ६ । १ । ४२-४४)

जीव शरीर अथवा मनोवृत्तियोंसे जितने कर्म करता है, उसके साक्षी सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, संध्या, रात-दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म होते हैं। इनके द्वारा ही प्राणियोंके द्वारा किये गये अधर्मका पता चलता है। तब दण्डके पात्रका निर्णय होता है। फिर पापकर्म करनेवाले मनुष्य अपने अपने कर्मोंके अनुसार दण्डनीय होते हैं। हे निष्पाप पुरुषों ! जो प्राणी कर्म करते हैं, उनका गुणोंसे सम्बन्ध रहता ही है। इसलिये सभी से कुछ पाप और कुछ पुण्य होते ही हैं। देहवान् होकर कोई भी पुरुष कर्म किये बिना रह ही नहीं सकता।

इस लोकमें जो मनुष्य जिस प्रकार धर्म या अधर्म करता है, वह परलोकमें उसका उतना और वैसा ही फल भोगता है। जगतमें सत्वादि त्रिविध गुणोंके भेदके अनुसार तीन प्रकारके प्राणी दीख पड़ते हैं—पुण्यात्मा, पापात्मा तथा पुण्य-पाप संयुक्त अथवा सुखी दुःखी, सुख-दुःख समन्वित। वैसे ही त्रिविधताका परलोकमें अनुमान किया जाता है। जैसे वर्तमान समय भूत-भविष्यका अनुमान करा देता है, वैसे ही वर्तमान समय के पाप-पुण्य भी भूत और भविष्यके पाप-पुण्यका अनुमान करा देते हैं।

हमारे स्वामी अजन्मा भगवान् सर्वज्ञ यमराज सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान हैं। इसलिये वे अपने मनसे सबके पूर्वरूपोंको देख लेते हैं और उनके भावी स्वरूपका भी विचार कर लेते हैं। जैसे सोया हुआ अज्ञानी पुरुष स्वप्नके समय प्रतीत हो रहे कल्पित शरीरको ही अपना वास्तविक शरीर समझता है, सोये अथवा जागनेवाले शरीर को भूल जाता है वैसे ही जाव भी अपने पूर्वजन्मोंकी याद भूल जाता है और वर्तमान शरीरके सिवाय पहले और पिछले शरीरोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता।

जीव पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, उनके विषयों, मन आदिके द्वारा विषयोंको भोगता है। जीवका यह सोलह कला और त्रिविध गुणोंवाला लिङ्ग शरीर अनादि है। यही जीवको बार-बार हर्ष, शोक, भय, पीड़ा देनेवाले जन्म-मृत्युके चक्करमें डालता है। जो जीव अज्ञानवश काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसे इच्छा न रहते हुए भी विभिन्न वासनाओंके अनुसार अनेकों कर्म करने पड़ते हैं। और वह रेशमके कीटकी भाँति कर्मजालमें निबद्ध हो जाता है। कोई भी शरीरधारी जीव बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। यदि वह उदासीन हो जाता है, तो प्राणीके स्वाभाविक गुण बलपूर्वक उसे विवश कर कर्म कराते हैं। प्राणी पूर्वजन्मके पाप-पुण्योंके

संस्कारोंके अनुसार स्थूल-सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है। स्वाभाविक वासनाओंके अनुसार कभी वह स्त्री रूप और कभी पुरुष रूप धारण करता है। प्रकृतिका संसर्ग होनेसे पुरुष अपनेको अपने वास्तविक स्वरूपके विपरीत लिङ्ग शरीरवाला मान बैठा है। उसका यह विपर्यय भगवानके भजनसे शीघ्र ही दूर हो जाता है।

हे देवपुरुषों ! यद्यपि अजामिल सभी प्रकारसे धर्मका पालन करनेवाला, शास्त्रज्ञ, सद्गुणोंका आकर, शीलसम्पन्न, सदाचारी था; परन्तु उसने एक वेश्याके कुसङ्गमें पड़कर अपने जीवनके बहुमूल्य समयको अधर्म, पाप कर्मोंमें बिताया है। अतएव हम इसे यमराजके पास ले जायेंगे। वहाँ यह अपने पापोंका दण्ड भोग कर शुद्ध हो जायगा क्योंकि अब तक इसने किसी भी रूपमें अपने पापोंका प्रायश्चित्त नहीं किया है।

इस प्रकार यमराजके दूतोंकी धर्म तत्व सम्बन्धी वार्ता सुनकर विष्णुके पार्षद उन्हें कहने लगे—

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ।
यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥
प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ।
यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥
(भा० ६।२।२,३)

यह बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है कि धर्मज्ञोंकी सभामें अधर्म प्रवेश कर रहा है। और निरपराध अदण्डनीय व्यक्तियोंको व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है। जो प्रजाके रक्षक हैं, शासक हैं, समदर्शी और परोपकारी हैं, यदि वे ही प्रजाके प्रति विषमताका व्यवहार करने लगें, तो फिर प्रजा किसकी शरण लेगी ?

यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ।
स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः ॥
स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ।
विस्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥
(भा० ६।२।४-६)

सत्पुरुष जैसे आचरण करते हैं, साधारण लोग भी वैसा ही आचरण करने लगते हैं। वे आचरणसे जिस कर्मको धर्मानुकूल प्रमाणित कर देते हैं, लोग उसीका अनुकरण करते हैं। साधारण जन धर्म-अधर्मका स्वरूप न जाननेके कारण पशुओंकी भाँति अज्ञानवश, किसी सत्पुरुष पर विश्वास कर लेते हैं, उसकी गोदमें ही शिर रखकर निर्भय और निश्चिन्त हो सो जाते हैं। वही दयालु सत्पुरुष जो प्राणियोंका विश्वासपात्र है और जिसे मित्रभावसे अपना हितैषी समझकर आत्मसमर्पण कर दिया है, उन अज्ञानी जीवोंके साथ कैसे विश्वासघात कर सकता है ? इसने कोटि-कोटि जन्मोंकी पापराशिका पूरा प्रायश्चित कर लिया है। इसने विवशावस्थामें ही सही, भगवान्‌के परमकल्याणमय चार अक्षरोंके नामका उच्चारण कर लिया है। अन्त समयमें किया गया भगवन्नामका उच्चारण सब पापोंको निर्मूल नष्ट कर देता है।

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥
(भा० ६।२।९-१०)

चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी, ऐसे लोगोंका संसर्गी, स्त्री-राजा-पिता-गायको मारनेवाला, चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो, सबके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि भगवान्‌के नामों का उच्चारण किया जाय। क्योंकि भगवन्नामोंके उच्चारणसे मनुष्यकी बुद्धि भगवान् के गुण, लीला और स्वरूपमें रम जाती है और स्वयं भगवान्‌की उसके प्रति आत्मीय बुद्धि हो जाती है।

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिः-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥
नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥
(भा० ६।२।११-१३)

बड़े बड़े ब्रह्मवादी ऋषियोंने पापोंकी निवृत्तिके लिये बहुतसे कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत प्रकट किये हैं। परन्तु उनसे पापीकी वैसी जड़से शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान्‌के नामोंके उच्चारण करनेसे होती है। क्योंकि वे नाम भगवान्‌के गुणोंका ज्ञान करानेमें सर्वश्रेष्ठ हैं। यदि प्रायश्चित्त करनेके बाद भी मन फिरसे कुमार्गमें पापोंकी ओर दौड़े, तो वह पाप-निवृत्तिकर पूरा प्रायश्चित्त नहीं है। अतः जो व्यक्ति पापकर्मों और वासनाओंको जड़से उखाड़ना चाहते हैं, उन्हें भगवान्‌के पावन गुणोंका गान ही करना चाहिये जिससे चित्त सर्वथा शुद्ध हो जाय।

बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री,
साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ

(क्रमशः)

*

विरह-संवाद

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी—

कल्याणके यशस्वी सम्पादक, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके गत २२ मार्च १९७१ को परलोकगमनसे भारतीय संस्कृति एवं समाजका एक प्रभावशाली लेखक, वक्ता एवं अग्रदूत इस लोकसे उठ गया। वे एक आदर्श समाजसेवी, लेखक, पत्रकार और धर्मप्राण थे। उन्होंने अपने जीवनका प्रारम्भ राजनीतिके माध्यमसे समाजकी सेवा द्वारा किया। परन्तु आधुनिक धर्म-निरपेक्ष, कपट, सेवा-भावरहित, केवल-स्वार्थमयी एवं पदलोलुपताकी सर्व-विनाशी राजनीतिसे शीघ्र ही ऊबकर उससे संन्यास ले लिया और 'कल्याण' के माध्यमसे भारतीय

संस्कृतिकी सेवाका व्रत ग्रहण किया। इस सेवा-व्रतको उन्होंने अपने जीवनकी अन्तिम श्वांस तक भली-भाँति निभाया है। जब कभी भी हमारी धर्म-निरपेक्ष सरकार या धर्म विरोधी समाजने भारतीय संस्कृतिके ऊपर प्रहार किया, पोद्दारजीने 'कल्याण' के माध्यमसे बड़ी दृढ़तापूर्वक प्रभावशाली ढंगसे उसका विरोध किया।

हम अखिल कल्याणनिधि भगवानसे श्रीपोद्दारजीके पारमार्थिक कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं।

श्रीकृष्णगोपाल वृजवासी "दीक्षितजी"—

श्रीधाम वृन्दावनके आबाल-वृद्ध-वनिता सबके अतिशय प्रिय, श्रीसारस्वत गौडीय सम्प्रदायके प्रसिद्ध पण्डाजी—श्रीकृष्णगोपाल वृजवासी "दीक्षितजी" विगत २४ पौष, ६ जनवरी, शनिवारको संध्या ५ बजे अपने वृन्दावनस्थ 'श्रीकृष्ण-कुञ्ज' में अनायास ही हरि-स्मरण करते-करते परलोक पधार गये हैं। अन्तिम समयमें भी इस धर्म-प्राण वृद्ध व्रजवासी के मुख-मण्डलपर अपूर्व शान्त-प्रशान्त सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा था।

व्रजवासीजीके परलोकगमनका संवाद क्षणभरमें ही वृन्दावन और मथुरामें सर्वत्र फैल गया। सहस्रों लोग उनके प्रति अपनी अन्तिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेके लिये एकत्रित हो गये। विविध प्रकारके वाद्य यन्त्रोंके माध्यमसे भगवन्नामका कीर्तन करते हुए उनके सुसज्जित कलेवरको लेकर अपार जन-समूह बीच-बीचमें उनके गुणोंका गान करता हुआ वृन्दावनकी परिक्रमा कर श्रीजमुनाके तटपर पहुँचा। वहीं वृजवासीजीकी अन्येष्टिक्रिया सम्पन्न हुई। उनके सुयोग्य तीनों पुत्र श्रीरमाशंकर दीक्षित, श्रीउमाशंकर दीक्षित और श्रीगौरी-शंकर दीक्षितने उनके श्राद्धोपलक्षमें २२ जनवरी शुक्रवारको एक विराट अनुष्ठानका आयोजन किया था, जिसमें बहुतसे ब्राह्मणों, वैष्णवों एवं सर्वसाधारणको विविध प्रकारके भगवत् प्रसाद से परितृप्त किया गया।

व्रजवासीजी बड़े ही धर्मप्राण, सरल, उदार, उपकारी एवं मृदुभाषी थे। ये जन्मजात कवि और साहित्यिक थे। व्रजभाषामें इन्होंने अनेक रचनाएँ की हैं। इनके कृष्णलीला सम्बन्धी बहुतसे सुमधुर पद व्रजकी रास-मण्डलियोंमें तथा रसिया-रसिक समाजमें प्रेमसे गाये जाते हैं। इनके परलोकगमनसे व्रजमण्डलमें हमने एक विशिष्ट बन्धु खो दिया। आशा करते हैं, इनके सुयोग्य उत्तराधिकारीगण उनके आदर्श पथपर चलकर उनके अभावकी पूर्ति करेंगे।

श्रीबलराम व्रजवासी—

हमें यह जानकर अत्यन्त वेदना हुई है कि श्रीसारस्वत गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायके श्रीगोवर्द्धनके तीर्थ पुरोहित श्रीबलराम व्रजवासीका गत १ अप्रैल शुक्रवारको परलोकगमन हो गया। जगद्गुरु श्रील सिद्धान्त सरस्वती और उनके शिष्य-प्रशिष्योंके प्रति इन व्रजवासी-

जीकी अपूर्व निष्ठा थी। अपने सरल और विनम्र व्यवहार तथा मधुर वाणी द्वारा सबको सन्तुष्ट रखते थे। कोई भी वैष्णव इनके पास पहुँचने पर, वे तन, मन, धन सर्वप्रकारसे उसकी सेवा-सत्कार और सहायता करते थे।

इनके परलोकगमनसे व्रजमें हमने एक अपना दूसरा विशिष्ट सहायक और बान्धव खो दिया, जिसकी पूर्ति होना असंभव है।

—प्रकाशक

श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा एवं श्रीगौर-जन्मोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें २१ फाल्गुन, ६ मार्च शनिवारसे लेकर २७ फाल्गुन, १२ मार्च, शुक्रवार तक श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगोरजन्मोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए हैं। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य त्रिदण्डिस्वामी परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराजकी नियामकता और देखरेखमें श्रीसमितिके त्रिदण्डि संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंने सुशृंखलतापूर्वक श्रीधाम-परिक्रमा और श्रीजन्मोत्सवका संचालन किया है।

बंगालमें वर्त्तमान समयमें राजनीतिक उथल-पुथल, अशान्ति, अराजकता, आगज़नी, हिंसा आदिका घोर ताण्डव नृत्य देखे जाने पर भी भगवान श्रीगौरचन्द्रकी कृपासे यह कार्यक्रम निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। सहस्राधिक यात्रियोंने धाम-परिक्रमा की। प्रथम पाँच दिन क्रमशः गोद्रुमद्वीप और मध्यद्वीप, कोलद्वीप और ऋतुद्वीप, जह्नुद्वीप और मोदद्रुमद्वीप, रुद्रद्वीप तथा अन्तमें सीमन्तद्वीप और अन्तर्द्वीप मायापुरकी परिक्रमा की गई।

प्रातःकाल परिक्रमा कर यात्री लोग दोपहरको श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ लौटकर प्रसाद सेवन करते थे। प्रतिदिन नियमित रूपसे सबेरे-शाम श्रीराधाविनोदविहारीजीकी आरति, संकीर्त्तन, शास्त्र-ग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन आदि होते थे। २६ फाल्गुनको श्रीचैतन्य महाप्रभुको आविर्भाव तिथिके दिन प्रातःकालसे सांयकाल तक श्रीचैतन्य भागवतका पाठ हुआ। सन्ध्यातक निर्जला उपवास करनेके पश्चात् सभीने अनुकल्प ग्रहण किया। आयोजित धर्म-सभामें सभी वक्ताओंने श्रीमन्महाप्रभुके दान-वैशिष्ट्य, उनकी अलौकिक शिक्षाओं तथा स्वयं-भगवत्तापर प्रकाश डाला। दूसरे दिन २७ फाल्गुनको आयोजित विशेष महोत्सवमें निमंत्रित-अनिमंत्रित सभी व्यक्तियोंको महाप्रसादका सेवन कराया गया।

—निजस्व संवाददाता